157.	श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, समीचा	385
158.	श्री विमलनाथ भगवान का मंदिर, ओलादर	387
159.	श्री शांतिनाथ भगवान का मंदिर, मजेरा	388
160.	श्री शीतलनाथ भगवान का मंदिर, कुम्भलगढ़	391
161.	श्री अभिनन्दन भगवान का मंदिर, केलवाड़ा	393
162.	श्री शांतिनाथ भगवान का मंदिर, केलवाड़ा	397
163.	श्री धर्मनाथ भगवान का मंदिर, तलादरी	399
164.	श्री मुनिसुव्रत भगवान का मंदिर, काकरवा	401
165.	श्री मुनिसुव्रत भगवान का मंदिर, कुँचोली	403
166.	श्री अजितनाथ भगवान का मंदिर, सादड़ा	404
167.	श्री आदिनाथ भगवान का मंदिर, कोठारिया	405
168.	श्री वासुपूज्य भगवान का मंदिर, कोठारिया	407
169.	श्री संभवनाथ भगवान का मंदिर, नमाणा	409
170.	श्री कुंथुनाथ भगवान का मंदिर, सालोर	411
171.	श्री आदिनाथ भगवान का मंदिर, सालोर (खण्डहर)	413
172.	श्री शीतलनाथ भगवान का मंदिर, पाखण्ड (खण्डहर)	413
173.	श्री संभवनाथ भगवान का मंदिर, बनेड़िया	414
174.	श्री आदिनाथ भगवान का मंदिर, सासेरा	416
175.	श्री आदिनाथ भगवान का मंदिर, दरीबा	417
176.	श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, रेलमगरा	419
177.	श्री जैन श्वेताम्बर मंदिर, चौकड़ी (खण्डहर)	420
178.	श्री चन्द्रप्रभ भगवान का मंदिर, मोही	421
179.	श्री शीतलनाथ भगवान का मंदिर, धोइंदा	423
180.	श्री नमिनाथ भगवान का मंदिर, कांकरोली	424
181.	श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, गजपुर (घाटा)	426
182.	श्री सम्भवनाथ भगवान का मंदिर, बोरज (खण्डहर)	427
183.	श्री आदिनाथ भगवान का मंदिर, बिनौल	428
184.	श्री नमिनाथ भगवान का मंदिर कुंवारिया	430
185.	श्री मुनिसुव्रत भगवान का मंदिर, कुरज	432
186.	श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर पनोत्या	433
187.	श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, गिलूण्ड	434
188.	श्री धर्मनाथ भगवान का मंदिर, देपुर	436
189.	श्री ऋषभदेव भगवान का मंदिर, देलवाड़ा, आदिनाथ भगवान का मंदिर, देलवाड़ा	
190.	श्री महावीर भगवान का मंदिर, देलवाड़ा, श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, देलवाड़ा	438–443
191.	संशोधन मेवाड़ के प्राचीन तीर्थ देलवाड़ा के जैन मंदिर नामक पुस्तक में	444
192.	चित्तौड़गढ़ जिला का मानचित्र	445
193.	श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, भूपालसागर	446
194.	मानचित्र अढ़ाई द्वीप	459
195.	संदर्भित पुस्तक मय लेखक प्रकाशन के नाम	460
196.	उदयपुर नगर का मानचित्र मय मंदिरों के नाम	461
197.	उदयपुर नगर के मंदिरों की अनुक्रमणिका	462
198.	शखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, उदयपुर	463

उदयपुर जिले के जैन तीर्थ-स्थल

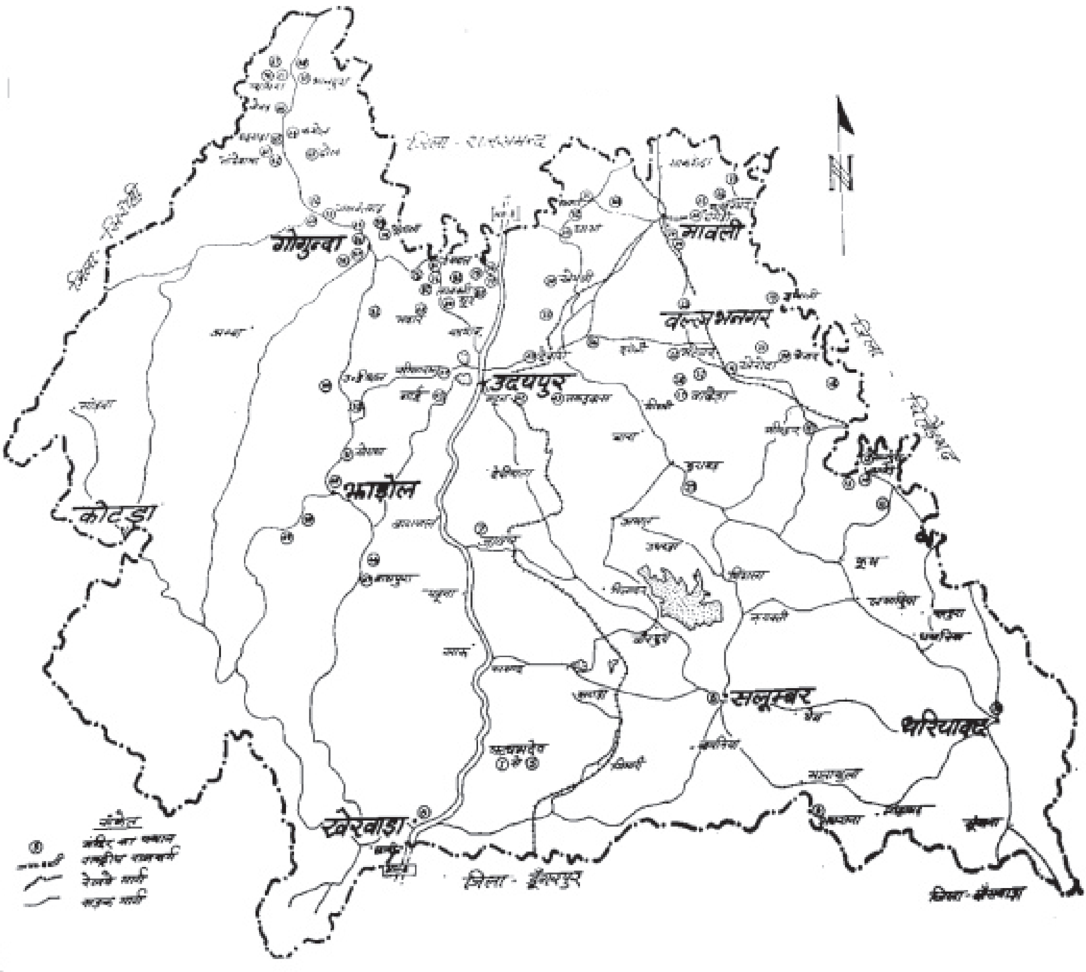

केसरिया जी तीर्थ

ईसवाल तीर्थ का दृश्य

श्री पद्मावती माता

सौजन्य :- श्री कल्याण जी सौभाग्यचन्द जैन पेढ़ी, पिण्डवाडा

मेवाड़ और जैन धर्म

मेवाड़ प्रदेश : जैन धर्म की दृष्टि से भारत का प्राचीनतम स्थान रहा है। यह प्रारम्भ से जैन धर्म का मुख्य केन्द्र रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता के समकालीन यदि कोई नगर मिलते हैं तो वे मेवाड़ में ही मिलते हैं और उस समय की लिपी **अर्द्ध मागधी** यहाँ पर ही मिली थी जिसको उदयपुर में आहाड़ (आयड़) के खनन से प्राप्त वस्तुओं में देखी जा सकती है। इसी प्रकार महाभारत कालीन नगरी चित्तौड़गढ़ के पास मिली है। विश्व के प्रथम सहकार व उद्योग केन्द्र जावर का निर्माण और उसके संचालन का श्रेय भी जैनियों को ही जाता है। दर्शाणपुर में भगवान महावीर का आगमन हुआ। नाणा, दियाणा और नांदियां में भगवान महावीर की जीवन्त प्रतिमाएँ हैं। ऋषभदेवजी (केशरियाजी) तीर्थ भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। यह प्रतिष्ठित प्रतिमा संवत् 928 में वटप्रद नगर (डूँगरपुर) में प्रगट हुई।

देलवाड़ा, राणकपुर मंदिर जैसी कला अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगी। मेवाड़ के देलवाड़ा के पास ही नागदा नगर प्राचीन काल का एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र रहा व मेवाड़ की राजधानी भी थी। यहाँ की पहाडी पर श्री पार्श्वनाथ भगवान का 10वीं शताब्दी का मंदिर है। इसी प्रकार देलवाड़ा जैन मंदिर में प्रतिमा सं. 1315 की, गुरूमूर्ति संवत् 1381 व गुरू पादुका संवत् 1165 की स्थापित है जो स्थावीर (स्थायी) कही जाती है। देलवाड़ा में श्री सोमसुंदरसूरि कई बार आये व उन्होंने अपनी रचनाएँ रचित की, इसी प्रकार श्री जिनसागर सूरि देलवाड़ा के निवासी थे, इन्होनें व श्री सोमसुन्दरसूरिजी ने संवत् 1450 से अनेकों प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई। देलवाड़ा के श्रेष्ठी श्री रामदेव व उनकी पत्नी ने भी अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई। श्री करेड़ा (भूपालसागर) के जिन मंदिर के एक स्तम्भ पर संवत् 55 उत्कीर्ण होने का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट होता है कि मंदिर अत्यधिक प्राचीन है तथा यहाँ पर संवत 1039 का शास्त्रोक्त साहित्य भी विद्यमान है। वर्तमान में संवत् 1021 की प्रतिमा विद्यमान है। यहाँ पर संवत् 861 की प्रतिमा प्रतिष्ठित होने का उल्लेख है। अब मेवाड़ के बारे में जानना आवश्यक है :–

मेवाड़ की उत्पत्ति– मेवाड़ राज्य के परिक्षेत्र में 'मेर–मेद' नामक जाति रहा करती थी और उन्हीं का अधिकार भी था, इसलिए सर्वप्रथम इसको मेदपाट कहा जाने लगा, तदुपरान्त श्रुत कथा के अनुसार मेदपाट राज्य के चारों ओर अरावली की पहाड़िया फैली हुई है, इसलिए इसको मेरूवाड़ कहा जाने लगा अर्थात् पहाड़ों की बाड़ है। बाद में लघु नाम 'मेवाड़' दिया गया। इस जाति की गणना हुणों से की जाती है लेकिन ये लोग (मेर जाति) शाकद्वीपीय ब्राह्मण के नाई कहलाते थे, जिनका प्रादुर्भाव ईरान की तरफ (शकस्तान) से बतलाते हैं। इस राज्य की सीमा के बारे में भी चितौड़गढ़ से 10 किलोमीटर की दूरी पर मध्यमिका नाम की प्राचीन नगरी के खण्ड़हर हैं, इसको वर्तमान में भी नगरी कहा जाता है। यहाँ से प्राप्त सिक्के विक्रम संवत् के पूर्व तीसरी शताब्दी के ब्राह्मी लिपी के लिखे हुए हैं। इन सिक्कों पर लेख है :–

मलि मिकाय शिवि–पदस (शिविदस) मध्यमिका का सिक्का था। इससे स्पष्ट है कि मेवाड़ प्रान्त चितौड़ के आस–पास था जो शिवि नाम से प्रसिद्ध था। बाद में मेवाड़ कहलाया जिसका वर्णन ऊपर उल्लेखित है। नगरी से प्राप्त शिलालेख जो 150–200 ई. पूर्व का है। यह कई भागों में खण्डित है।

इस पर **धोसुण्डी** लिपी है, अस्पष्ट है। इस पर संस्कृत, राजस्थानी (मेवाड़ी) ब्राह्मी लिपी में अंकित है तथा अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। यह भाषा राजस्थान में ही प्रचलित थी। (राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत द्वारा गोपीनाथ शर्मा) यह शिलालेख उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है।

आहाड़ (आधाटपुर) प्राचीन नगर जो ईसा पूर्व का है जिसके प्रमाण कुछ इस प्रकार हैं – आहाड़ में स्थित गंगोभदेव (गंगोद्भव) अपभ्रंश गंगोज कुण्ड है, इसके बीच में स्थित छतरी राजा विक्रमादित्य के पिता गन्धर्वसेन की मानते हैं। इस नगर को मालवा के परमार राजा **मुंज** ने वि.सं. 1030 के लगभग आक्रमण कर नष्ट किया, तत्पश्चात प्राकृतिक आपदाओं से पूरा नगर नष्ट हो गया। सं. 1000 का शिलालेख जो राजा भर्तृभट्ट के समय का है, उसको तोड़कर दूसरे कुण्ड़ की दीवार में लगाया। एक आहाड़ में स्थित जैन मंदिर की व दूसरे को हस्तीमाता मंदिर की सीढी पर लगाया गया। वर्तमान में आहाड़ के जैन मंदिर के जिणोंद्धार होंने से यह लेख सुरक्षित नहीं रहा।

राजा अल्लट के समय सं. 1010 के शिलालेख के पत्थर से सारणेश्वर महादेव का छज्जा बना। उक्त चारों शिलालेखों में से दो को संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। कुम्भलगढ से भी जो शिलालेख उपलब्ध हुए, वे सुरक्षित रखे गये हैं। इसी प्रकार भीलवाड़ा से 50 किलोमीटर दूरी पर नांदसा गांव के एक गोल स्तम्भ 12'' ऊँचा व 5.5'' गोलाई का है, इस पर 11 पट्टिकाओं का लेख है। नगरी का लेख (425 ई.) का है। इसका आकार 11'' x 11'' का है जिन पर 8 पंक्तियाँ है। संस्कृत व नागरी लिपी का लेख है। यह लेख अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार महाराणा अपराजित का शिलालेख जो कुण्डेश्वर मंदिर पर था। अब सरस्वती पुस्तकालय के संग्रहालय में है। जिस पर वि. सं. 718 मार्ग सुदि का लेख उत्कीर्ण है। यह शिलालेख नागदा से मिला था।

आचार्य श्री हरिभद्रसूरि चित्तौड़ के रहने वाले थे, उन्होंने लाखों लोगों को प्रतिबोधित कर अहिंसक जैन बनाये व कई कृत्यों की रचना की। 7वीं शताब्दी में मेवाड़ के **महाराणा तेजसिंह ने जैन धर्म अंगीकार किया तदुपरान्त महाराणा अल्लट, जैत्रासिंह ने भी जैन धर्म का पालन किया। महाराणा समरसिंह ने मेवाड़ राज्य में जीव हिंसा निषेध आज्ञा प्रसारित की। आचार्य जगच्चन्द्रसूरि को तपा हिरला बिरूद की उपाधि प्रदान की।** यहाँ से तपागच्छ की उत्पत्ति हुई और जैन समुदाय का ही एक सम्प्रदाय तेरापंथ भी राजनगर से प्रारम्भ हुआ। चितौड़, नागदा व एकलिंगजी आदि स्थानों पर जहाँ पर विशाल हिन्दू मंदिर है, उनमें जैन मूतियां अंकित मिलेगी। यहाँ जैन मंदिर जितने अधिक तादाद में हैं, उतने अन्य सभी धर्म के भी नहीं मिलेंगे।

मेवाड़ व जैन धर्म का संबंध संवत् 79 से होंने का उल्लेख मिलता है। वि.सं. 79 में आचार्य देवगुप्तसूरि तथा संवत् 215 में श्री यज्ञदेवसूरि का मेवाड़ में विहार करने का उल्लेख मिलता है। उसके बाद सातवीं शताब्दी में श्री हरिभद्र सूरि का प्रमाण मिलता है। वि.सं. 1000 में चैत्रपुरीय गच्छ के आचार्य द्वारा आदिनाथ भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई गई। युग प्रधान श्री जिनदत्त सूरि जी को आचार्य पद्वी चित्तौड़ में प्रदान हुई। संवत् 1044 में हरिषेण रचित जैन ग्रंथ में मेवाड़ देश का उल्लेख किया गया है।

मेवाड़ का दक्षिणी भारत से भी संबंध रहा है। कई दिगम्बर विद्वान कन्नड़ क्षेत्र से यहाँ आते–जाते रहे थे। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में भी यह उल्लेखित है कि दिगम्बर आचार्य एलाचार्य

चितौडगढ़ दुर्ग पर रहते थे। वीरसेनाचार्य भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए एलाचार्य के पास आये थे। दक्षिणी भारत में उत्कीर्ण लेखों में कई स्थानों पर चित्रकूट (चितौड़) का उल्लेख आता है।

यद्यपि मेवाड़ के शासक शैव, वैष्णव धर्म के उपासक थे फिर भी जैन धर्म का प्रचार प्रचुर मात्रा में हुआ और फला–फूला। यहाँ तक कि महाराणा कर्णसिंह (रणसिंह) के पुत्र श्रवण ने यति धर्म स्वीकार किया तथा इनके भी पुत्र पतजी ने जैन धर्म अंगीकार किया। इसके पूर्व महाराणा खुमाण के वंशी सदस्य जैन धर्म में चारित्र धर्म स्वीकार किया और जैन शासन श्री समुद्र सूरि जी ने सम्भाला था इनके ही कई शासक जैन साधुओं का सत्कार करते थे और उन्हें मेवाड़ में आने के लिए लिखित में निमंत्रण भेजते थे। **महाराणा प्रताप ने श्री हीरसुरीश्वरजी को पत्र लिखा, उसकी प्रति इस प्रकार है** –

''स्वस्ति श्री मदसुदा नग्र महाशुभस्थानै सरब औपमा लाअंक भट्टारकजी महाराज श्री हीरविजयसूरिजी चरण कमलां अणे स्वस्त श्री वजेकटक चाउण्ड रा डेरा सुथाने महाराजाधिराज श्री राणा प्रतापसिंहजी की पगे लागणो बंचसी। अठारा समाचार भला है, आपरा सदा भला छाइजे। आप बड़े है, पूजनीक है, सदा करपा राखे जीसुं ससह (श्रेष्ठ) रखावेगा अप्रं आपरो पत्रा अणा दना म्हे आया नहीं सो करपा कर लखावेगा। श्री बड़ा हजूर री बगत पदारवो हुवो जीमें अठासूं पाछा पदारता पातसा अकब्रजी ने जेना बाद म्हे ग्रानरा प्रतिबोद दीदो जीरो चमत्कार मोटो बताया जीवहंसा छरकली (चिड़िया) तथा नाम पखैरू (पक्षी) वेती सो माफ कराई जीरो मोटो उपगार किदो सो श्री जैन रा धर्म में आप असाहीज अदोतकारी अबार की सै (समय) देखतां आप जू फेरवे नहीं आवी पूरव ही हीदुसस्थान अत्रावेद गुजरात सुदा चारू सहा म्हे धर्म रो बडो अदोतकार देखाणो, जठा पछे आपरो पदारणो हुवो न्हीं सो कारण कही वेगा। पदारसी आगे सु पटा प्रवाना कारण रा दस्तुर माफक आप्रे हे जी माफक तोलमुरजाद सामो आवो सा बतरेगा श्री बड़ा हुजुर री बखत आप्री मुरजाद सामो आवा री कसर पडी सुणी सो काम कारण लेखे भूल रही वेगा जीरो अंदेसो नहीं जाणेगा। आगेसु श्री हेमा आचारजी ने श्री राम्हे मान्या हे जीरो पटो कर देवाणो जि माफक अरो पगरा भटारख गादी प्र आवेगा तो पटा माफक मान्या जावेगा। श्री हेमाचारजी पेलां ही बडगच्छ रा भट्टारखजी ने बड़ा करण सु श्री राज म्हे मान्यां जि माफक आपने आपरा पगरा गादी प्रपाटहवी तपगच्छ रा ने मान्या जावेगारी सुवाये देश म्हे आप्रे गच्छ रो देवरो तथा उपासरो वेगा जीरो मुरजाद श्री राजसु वा दुजा गच्छरा भट्टारख आवेगा सो राखेगा। श्री समगोरो समत 1635 रा वर्ष आसोज सुद 5 गुरूवार।

– तपागच्छ पट्टावली कल्याण विजयजी महाराज द्वारा लिखित, पृष्ठ सं. 234

आघाटपुर (आहाड़) की सभ्यता के अनुरूप ही उदयपुर जिले के जावर नगर (ग्राम) बहुत प्राचीन है। इस नगर का प्राचीन नाम **योगिनी पत्तन** अथवा **योगिनीपुर** था। इस नगर में चतुर्थ शताब्दी में श्रेयमन संत (श्रेयमनगिरी) जैन संत रहा करते थे और यह जैन श्रेष्ठियों के लिये एक तीर्थ स्थल रहा है जैसा कि तीर्थ स्तवन में इसका उल्लेख आता है। इसके बाद 7वीं शताब्दी के मेवाड़ के महाराणा शिलादित्य के समय का शिलालेख (संवत् 703) इस क्षेत्र से उपलब्ध हुआ जो अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है। जैन मंदिरों के खण्डहर एवं खण्डित मूर्तियां आज भी देखी जा सकती है। यह एक औद्योगिक नगर था और आज भी है।

वास्तव में मेवाड़ भारत वर्ष की आत्मा है जो सर्वदा प्रतिस्पिन्दित होती है।

मूर्तिपूजा का प्रचलन - विरोध और वर्तमान में आवश्यकता व महत्व

इतिहास एवं शास्त्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि मूर्ति पूजा का प्रचलन जैन धर्म से ही हुआ है। जैन धर्म अनादिकालिन है। सर्वप्रथम जैन धर्म ही था, जो भारत में विद्यमान था। ऐसा उदयपुर नगर के जैन श्वेताम्बर मंदिर एवं मेवाड़ के प्राचीन तीर्थ की पुस्तक में स्पष्ट किया है जैन धर्म में प्रचलित मूर्तिपूजा का अनुकरण बौद्ध, शैव व वैष्णव सम्प्रदायों ने किया। यह परम्परा 15वीं शताब्दी तक निरन्तर चलती रही, किसी प्रकार का विरोध नहीं था, अर्थात् सभी सम्प्रदाय में मूर्तिपूजा की मान्यता भगवान महावीर के निर्वाण के समय तक बनी रही।

लेकिन बाद में मुगलों के आक्रमण, गच्छवाद का उदय, सत्ता की लोलुपता से मूर्तिपूजा का विरोध होने लगा। इसी समय से अलग–अलग पंथ निकले जैसे–संवत् 1542 में जांभोंजी द्वारा विश्नोई सम्प्रदाय, इसी सदी में लोकाशाह द्वारा स्थानकवासी सम्प्रदाय, संवत् 1636 में दादु द्वारा दादु पंथ, संवत् 1708 में लवजी द्वारा स्थानकवासी सम्प्रदाय को (सुदृढ रूप से) तारण स्वामी द्वारा तारण पंथ (दिगम्बर शाखा) तथा 17वीं शताब्दी में कबीर पंथ, नानक पंथ तथा संवत् 1817 में भीलवाड़ा के सांगानेर ग्राम में रामस्नेही सम्प्रदाय (रामानुज का), संवत् 1817 में केलवा में स्थानकवासी सम्प्रदाय में से तेरापंथ जैन सम्प्रदाय और बाद में आर्य समाज व अन्य समाजों में मत–मतान्तर के कारण मूर्तिपूजा का विरोध किया जाने लगा।

मूर्ति क्या है, कैसी है और क्या अर्थ है

किसी की आकृति, शक्ल, आकार, चित्र व प्रतिमा को मूर्ति कहते हैं। मूर्ति किसी की भी जैसे पाषाण, धातु, काष्ठ, मिट्टी की हो, पूँजी जाती है। सभी समाज में मूर्ति को आदर से देखते हैं। वैज्ञानिक, व्यवहारिक, धार्मिक अनुष्ठान के कार्य बिना मूर्ति के नहीं होते हैं क्योंकि ऐसी मान्यता है कि किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए मूर्ति की आवश्यकता होती है। मूर्ति मानने के लिए सभी विद्वान एक मत है लेकिन मनुष्य के मस्तिष्क में यह विचार आना स्वाभाविक है कि मूर्ति जड़ है, उसकी पूजा क्यों करें जबकि ईश्वर निराकार है। यदि ईश्वर निराकार है तो ईश्वरीय गुण भी निराकार है अर्थात् ईश्वर के गुण को ईश्वर से पृथक नहीं कर सकते, क्योंकि गुणी से गुण अलग नहीं रह सकते।

वर्तमान युग में शिलालेखों, लेखों, पुरातत्व के शोध से यह सिद्ध हो चुका है कि मूर्तिपूजा की अवधारणा अति प्राचीन है व विश्व के साथ मूर्तिपूजा का धनिष्ठ संबंध है और सिद्ध यह भी हो चुका है कि 7वीं शताब्दी तक यूरोप, एशिया तथा अन्य स्थानों पर मूर्तिपूजा का प्रचलन था। अनुसंधान करने पर ज्ञात हुआ कि आष्ट्रिया में महावीर भगवान्, अमेरिका में ताम्र का सिद्धचक्र यंत्र, मलेशिया में कई मंदिरों के अवशेष मिले। यहाँ तक मक्का मदीना में भी जैन मंदिर थे। इसका विरोध होंने के कारण वहाँ से मूर्तिएं हटाकर महुवा (मधुमति) लाई गई।

मूर्तिपूजा का विरोध किसने, क्यों किया व वर्तमान में क्या करते हैं

1. पैगम्बर मुहम्मद के समय सर्वप्रथम अर्बस्थान में मूर्तिपूजा का विरोध हुआ। इसका मूल कारण अत्याचार करना था। जिसके फलस्वरूप मुस्लिम लोग अत्याचार के बल पर धर्म परिवर्तन कराने

लगे लेकिन इसका प्रभाव अधिक नहीं पड़ा वरन् इस अवधि में मंदिर अधिक बनने लगे।

2. **ईसाई धर्म** – ईसामसीह ने मूर्तिपूजा का विरोध किया। आज उन्हीं के शिष्यों में से सौक्रेटिस सुकरात ने अनेकों प्रमाणों द्वारा मूर्तिपूजा को उचित ठहराया।

3. **पारसी धर्म** – पारसी लोग अमूर्तिपूजक नहीं रहे, वे भी सूर्यदेव की पूजा करते हैं और पूजा को योग्य व उपयोगी मानते हैं । इसी अनुरूप ईसाई धर्म ने भी माना । पारसी अपने पैगम्बर **जरथोस्थ** का फोटो रखते हैं और वे लोग आइने की पूजा करते हैं । (मूर्तिपूजा बुक पृष्ठ–103 – लार्ड मैकाले मिल्टन के निबन्ध का सारांश)

4. **यहूदी धर्म**– यहूदी धर्म के अनुयायी भी मूर्तिपूजा को उचित मानने लगे हैं। बाइबिल के पूर्वाद्ध में उल्लेख है– दाउद को यह विचार आया कि मुझे गडरियों का राजा बनाया था, मैं अच्छे मकान में रहता हूँ और ईश्वर को परदे में रखता हूँ और नथान नामक पुरोहित को स्वप्न में परमेश्वर ने स्वयं दर्शन दिये और कहा– मेरे सेवक दाउद को कहना कि परमेश्वर ने कहा है कि क्या तू मेरे लिए एकघर बनायेगा। इजिप्त को इजराइल वंशज से छुड़ाया है, तब से आज तक तम्बू में रह रहा हूँ। ईश्वर के आदेश से दाउद ने ईश्वर के लिए मकान (मंदिर) बनाया और वहाँ ईश्वर की आकृति की भक्ति से उपासना करने लगा। (बाइबिल के पूर्वार्द्ध में उल्लेख Old I, II sunnel chapter VII/6

स्थानकवासी– जैन धर्म का ही एक समूह जो मूर्तिपूजक थे, उन्होनें विरोध किया जबकि वे आज भी मूर्तिपूजक है, उसका प्रमाण आगे दिया जावेगा। यहाँ पर यह लिखना चाहूँगा कि जैन धर्म के किसी भी सम्प्रदाय के हों अपनी–अपनी मान्यता के अनुसार क्रिया कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए लेकिन हम एक दूसरे की आलोचना कर जैन धर्म को ही नुकसान पहुँचा रहे हैं। इसका ध्यान रखना चाहिए।

सर्वप्रथम मूर्तिपूजा– मूर्ति की ऐतिहासिकता, प्राचीनता का प्रमाणीकरण निम्न प्रकार है जिससे यह सिद्ध होगा कि मूर्तिपूजा का प्रचलन अनादिकालीन है।

1 श्री नेमिनाथ भगवान के शासन में श्री आषाढ़ी नामक श्रावक जो गौड़ देश का रहने वाला था, ने स्वकल्याणार्थ तीन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई। उनमें से एक (स्तभन तीर्थ में) श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा सम्प्रति काल में भी विद्यमान है जिसके पीछे यह लेख उत्कीर्ण है–

नमेस्तीर्थकृतस्तीर्थे, वर्षे द्विक चतुष्टये, आषाढ श्रावको गौड़ो ऽकारयत् प्रतिमात्रयम् इस शिलालेख से यह सिद्ध होता है कि श्री नेमिनाथ भगवान के 2230 वर्ष बाद आषाढ श्रावक ने इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई।

2 प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास भाग 2 पृष्ठ 132 में 200 सिक्कों के चित्र दिये हैं। इन सिक्कों पर चैत्य व हस्ती के दृश्य अंकित हैं। ये सिक्के मौर्यकालीन है और मौर्यकालीन समय 2500 वर्ष पूर्व है।

3 तक्षशिला के पास खुदाई में एक नगर निकला जिसको मोहन–जो–दड़ो कहा गया। यहाँ पर 5000 वर्ष पूर्व की एक मूर्ति मिली है अर्थात् 5000 वर्ष पूर्व मूर्ति पूजा प्रचलित थी।

4 **सिंध**–पंजाब की सीमा पर खुदाई से निकले नगर को हड़प्पा कहा गया है। यह नगर 5000

से 10000 वर्ष पुराना है। यहाँ पर देवियों की मूर्तियाँ निकली है। इससे यह स्पष्ट है कि मूर्ति प्रचलन बहुत प्राचीन है।

5 **उड़ीसा के कुमार–कुमारी** नामक पहाड़ों में शत्रुजंय, गिरनार, अवतार समझते थे। आज उन्हें खण्डगिरी व उदयगिरी पुकारते हैं। ये दोनों पहाड़ जैन मंदिर से विभूषित हैं। यहाँ पर एक शिलालेख का पत्थर मिला जो 17 पंक्तियों का था, उसका अध्ययन व शोध करने पर ज्ञात हुआ कि महाराज खारवेल के समय का था और 12वीं पंक्ति में जैन मूर्ति का भी उल्लेख है। इसका उल्लेख कई जगह पर कई जैन साधुओं ने दर्शाया है।

6 वि. सं. 84 वर्ष का बड़ली (अजमेर) का शिलालेख मिला है, जिस पर उल्लेख है –

'वीराय भगवते चतुराविसी वासे माझिमिके'। यह शिलालेख अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है और यह वही नगरी है जिसका प्राचीन नाम मध्यमिका नगरी था। (इसका उल्लेख पं. गोरी शंकर ओझा ने अपनी पुस्तक में किया है।)

इस लेख को पढने के बाद स्थानकवासी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि महावीर भगवान के बाद 84 वर्षो से ही मूर्तिपूजा का अस्तित्व रहता है। अब यह प्रश्न है कि 2000 वर्षों के बाद कुछ लोगों ने मूर्तिपूजा का विरोध किया है जबकि पूर्व में कई विद्वान हुए हैं उन्होनें विरोध नहीं किया। इनका वर्णन भी आगे स्पष्ट किया जायेगा।

मूर्तिपूजा की प्राचीनता के उदाहरण

1. महाराजा चेटक के समय का है जब महाराजा चेटक व कोणिक (अजातशत्रु) के बीच युद्ध हुआ और कोणिक ने विशाला को घेर लिया तथा एक नैमेतिक (शकुनज्ञ) ने कहा कि जब इस नगरी के स्थानीय मुनि सुव्रतस्वामी का स्तूप न गिरावें, तब तक इस नगरी पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। इस प्रकार स्तूप को गिराकर विजय प्राप्त की। इसका वर्णन नंदीसूत्र (32 सूत्रान्तर्गत) नामक ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख है। यह काल 2500 वर्ष पूर्व का है।
2. बरार (आकोला) के पास एक घर की खुदाई पर 19 अखण्डित व खण्डित जैन मूर्तियाँ मिली है जो ईस्वी सन् से 600–700 वर्ष प्राचीन सिद्ध हुई है। ये मूर्तियाँ नागपुर के म्यूजियम में सुरक्षित हैं।
3. महात्मा बुद्ध सर्वप्रथम अपने धर्म का उपदेश राजगृही तीर्थ में देने आये, उस समय सुपार्श्वनाथ भगवान के तीर्थ में ठहरे थे, ऐसा बोध गाथा 'महावग्गा' के 1–22–23 में उल्लेख है, जबकि इसे तीर्थ को सुपतित्थ' कहा है, अर्थात् सुपार्श्वनाथ को पाली भाषा में सुप्पातित्थ कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि महावीर भगवान के समय सुपार्श्वनाथ भगवान का मंदिर था।

4 कच्छ भद्रेश्वर नगर में एक प्राचीन मंदिर जो आज भी विद्यमान है जिसको भगवान महावीर के निर्वाण के 23 वर्ष बाद बनाया और सुधर्मा स्वामी द्वारा प्रतिष्ठा कराई गई, ऐसा शिलालेख द्वारा स्पष्ट होता है। इस शिलालेख की नकल श्री विजयानन्द सूरि जी ने अज्ञान तिमिर भास्कर नामक ग्रन्थ में लिखी है।

5 उपकेशपुर (ओसिया) और कोरण्टा के महावीर भगवान् के मंदिर भी वीरात 70 वर्ष में

रत्नप्रभसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठा कराई गई।

6 वीर सं. 82 व 104 के 9 शिलालेख, प्रेवीस जिला के मालाना ग्राम में खनन से प्राप्त प्रतिमाएँ जैनों की है।

7 इसी प्रकार पटना की बस्ती अगमकुंआ से मिली दो प्रतिमाएँ कोणिक महाराज के समय की सिद्ध हैं।

8 जैसलमेर (काठियावाड़) के पास मायाबंदर स्टेशन के पास ढाका ग्राम में प्राचीन जैन मूर्तियाँ मिली हैं।

9 परखम नामक ग्राम (मथुरा के पास) एक प्रतिमा मिली है जिस पर ब्राह्मी लिपी का लेख है, इसको पढ़ने से ज्ञात होता है कि यह मूर्ति 2300 वर्ष पुरानी है (सरस्वती मासिक पत्र 15 अंक 2)। इसी प्रकार जैन बिम्ब भी मिला है जो 2500 वर्ष प्राचीन है।

10 उत्तर–पूर्व भारत में प्राप्त प्रतिमाओं की तरह ही दक्षिण भारत (महाराष्ट्र) में भी जैन स्तूप, व मूर्तियाँ मिली हैं जो **मौर्यचन्द्रगुप्त** के समय की है। (प्राचीन स्मारक नामक पुस्तक)

11 भगवान महावीर की मूर्ति (अंग्रेजों द्वारा कराई गई खुदाई में) प्राप्त हुई, वह 2300 वर्ष प्राचीन है। (भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास पृष्ठ 167)

12 बैनावर नगर से प्राप्त मूर्ति श्री पार्श्वनाथ की विक्रम सं. से पूर्व तीसरी शताब्दी की है। (भारतवर्ष का इतिहास पृष्ठ सं. 122)

13 श्रावस्ती नगर में भी खनन में उपलब्ध मूर्ति भगवान महावीर के पूर्व की है। (जैन ज्योति अंक दिनांक 25.4.36)

14 इसी प्रकार मण्डोर (राजस्थान) में एक दो मंजिला मंदिर मिला है जो भग्नावस्था में है, वह काफी प्राचीन है।

15 कई उदाहरण है जिसका वर्णन ''राजपुताना का इतिहास'' नामक पुस्तक सं. 1413 पर (लेखक डॉ. गौरीशंकर ओझा ने) किया है। जो यह सिद्ध करते हैं कि मूर्तिपूजा 2200 वर्ष से भी पुरानी हैं।

16 मथुरा के प्राचीन किले में खुदाई का कार्य करने पर प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के व अन्य वस्तुऐं मिली हैं। कई जैन मूर्तियाँ, पादुकाएँ, तोरण, पबासन मिले हैं, उन पर शिलालेख हैं जो 2200 वर्ष पुराने हैं। खुदाई का कार्य सन् 1871 में जनरल कनिघंम ने, इसी प्रकार इसी मथूरा कंकाली टीला में दो हजार वर्ष पूर्व कई जैन मूर्तिएँ, स्तूप, तोरण, स्तम्भ व 110 शिलालेख चित्रित है जो जैन मूर्तियों से सम्बन्धित हैं। इनके चित्र भी प्रस्तुत हैं। सन् 1875 में ग्रौस ने, सन् 1887 से 1896 तक डॉ. बंसल व डॉ. फहरर की देखरेख में यह कार्य हुआ।

17 पुरातत्ववेत्ता श्री विन्सेन्ट स्मिथ ने कहा है कि खोजों से जैनियों के ग्रन्थ के विवरण का समर्थन अधिक हुआ है और यह जैन धर्म की प्राचीनता का द्योतक है। इस प्रकार का लेख डॉ. व्हूलर के एफिग्राफि इण्डिका नामक पत्र की पहली पुस्तक में प्रकाशित है।

18 अहिछत्ता नगरी के खुदाई में प्राचीन मंदिर के खण्डहर तथा मूर्तियाँ प्राप्त हुई है जो ईस्वी सन्

200 वर्ष पूर्व के जिनालय है, इसका कथाकोष ग्रन्थ में उल्लेख है जो यह है– (वसुपाल के सहस्त्रकूट जिनालय)

– अहिछत्रपुरे राजा, वसुपालविचक्षणः।
श्रीमज्जैन मते भक्तो, वसुमत्यभिधा स्त्रिया।।
तेन श्री वसुपालेन, कारितं भुवनो त्तमम्ः।
लखत्सहस्त्राकुटे श्री जिनेन्द्र भवने शुभे।।

इससे स्वतः सिद्ध है कि मूर्तिपूजा प्राचीन है।

19 दिनांक 04.03.1914 के जैन साहित्य सभा में डॉ. हरमन जेकाबी ने कहा कि जैन आगमों में मूर्तिपूजा का विधान ही है। (जैन साहित्य सम्मेलन प्रकाशित 1916 पृष्ठ 37)

वैष्णव में रामचरण, अंग्रेजों में ह्यूमर आदि ने मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से मूर्तिपूजा के विरूद्ध घोषणा कर दी। अब यहाँ लोंकाशाह जो एक जैन श्रावक थे, वे क्यों ऐसी विचारधारा के हुए, इसका मुख्य कारण यह है– 'लोंकाशाह का जैन मुनियों (साधुओं) द्वारा अपमान हुआ' इसके कारण से मुस्लिम लोगों का भी सहयोग मिला। इस कथन को सत्य प्रमाणित करने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. वि.सं. 1544 के आसपास उपाध्याय श्री कमलसंयम अपनी सार चौपाई में लिखा है कि लोंकाशाह पर मुस्लिम संस्कृति का बुरा प्रभाव पड़ा और लोंकाशाह के मत प्रचार में मुसलमानों का भी सहयोग था।
2. जैन साहित्य संशोधक त्रैमासिक पत्रिका वर्ष 3 अंक 3 पृष्ठ 49 में वीरवंशावली नामक पट्टावली का प्रकाशन हुआ है। उसमें लिखा है कि लोंकाशाह का अपमान हुआ और लोंकाशाह ने क्रोध वश ऐसा कार्य किया।
3. सवंत् 1889 ज्येष्ठ शुक्ला 13 शुक्रवार को सिरोही में पं. खुशाल विजयगणि ने कृत भाषा पट्टावली 14 पृष्ठों में लोंकाशाह के बारे में लिखा है कि– लोंकाशाह लिखाई का कार्य करता था। लिखने में कुछ मतभेद हो गये तो क्रोधवश और शैयद लेखक का संयोग मिलने से जैन यतियों, उपाश्रय, मंदिर यहाँ तक जैन धर्म की मुख्य क्रियाओं के विरूद्ध होकर नया मत निकाला।
4. शैयद लेखक ने लोंकाशाह को पूछा कि 'तुम्हारे कपाल पर क्या लगा है, उन्होंने बताया कि तिलक (मंदिर का थंभा) है। इसकी पुष्टि लोकागच्छीय यति भानुचन्द्रजी की चौपाई से होती है। अर्थात् लोंकाशाह भी हमेशा पूजा करते थे।
5. इतिहासकार एक अंग्रेज महिला मिसेज स्टीवन्सन लिखती है कि हिन्द में इस्लाम संस्कृति के प्रारम्भ होने के बाद मूर्ति विरोध के आन्दोलन प्रारम्भ हुए।
6. पं. सुखलालजी अपने व्याख्यान में लिखते हैं कि हिन्दुस्तान में मूर्ति के विरोध की विचारधारा मुहम्मद पैगम्बर के बाद में अरबों व अन्यों के द्वारा प्रारम्भ हुई हैं।
7. श्री अनीन्द्रचन्द्र विद्यालंकार अपने पठान काल का सिंहावलोकन नामक लेख में लिखते हैं (माधुरी

मासिक पत्रिका में प्रकाशित है) मुस्लिमों की सभ्यता बिल्कुल निराली थी, वे जाति–प्रथा, मूर्तिपूजा को नहीं मानते और भारत में इनके आने के बाद ही मूर्तिपूजा का विरोध आन्दोलन होने लगे।

8. इसी प्रकार श्री गौरीशंकरजी ओझा भी अपनी पुस्तक 'राजपुताना' का इतिहास में लिखते हैं– स्थानकवासी जो बारहपंथी, तेरापंथी कहलाए, उनको प्रारम्भ हुए 300 वर्ष हुए।

9. श्री नाथुरामजी प्रेमी ने अपने भाषण में स्पष्ट कहा कि मूर्ति पूजा का विरोध करके लोकाशाह ने अपने मत की स्थापना की। इन पर इस्लाम धर्म का प्रभाव पड़ा।

10. दिगम्बर समाज का तेरापंथ भी इसी प्रभाव का परिणाम है। लोकाशाह ने केवल मूर्तिपूजा का ही विरोध नहीं किया वरन् उन्होनें उपाश्रय, मुनियों, जैनागम, जैन श्रमण, सामायिक, प्रतिक्रमण, दान–देवपूजा का विरोध किया लेकिन वास्तविकता देखें तो वर्तमान में स्थानकवासी देवी–देवता व मंदिर में स्थापित प्रतिमा की पूजा करते हैं। यह सब व्यक्तिगत विचारधारा पर निर्भर करती है। विस्तृत जानकारी आगे दी जा रही है।

11. मूर्ति पूजा का प्रथम विरोध मुस्लिम मत द्वारा हुआ जिसका वर्णन ऊपर किया गया।

12. मूर्ति पूजा न मानने वालों में दूसरा मत ईसाइ धर्म के अनुयायी हैं लेकिन ईसाई लोग अपने गिरिजाघरों में जाकर ईसा मसीह की लटकती हुई मूर्ति को पुष्पहार चढाते हैं, पूज्य भाव से देखते हैं, पूजा करते हैं, यह मूर्ति पूजा ही है और आज भी यूरोप में देवी–देवताओं की मूर्तियाँ खुदाई में मिली हैं जिससे स्पष्ट है कि मूर्ति पूजा का प्रचलन पूर्व में भी था।

13. कबीर, नानक, रामचरण आदि के अनुयायी भी मूर्ति विरोधी होंने के बावजूद भी उनके पूज्य पुरूषों की समाधियाँ बनाकर उनकी पूजा करते हैं। वहाँ दर्शन के लिए मेला लगता है।

14. इसी प्रकार स्थानकवासी भी मानते हैं कि अपने पूज्य पुरूषों की समाधि, पादुका, मूर्ति, फोटो, बिम्ब–बनवा कर उनके दर्शन करते हैं, पूजा करते हैं। लोंकाशाह मत के कई पूज्य मेघजी, आनन्दजी, श्रीपालजी आदि ने लोकामत को त्याग दिया और मूर्तिपूजक में दीक्षित हुए। श्रीधर्मसिंहजी व श्रीलवजी को लोंकागच्छ के पूज्य ने गच्छ से निकाल दिया।

इसको प्रमाणित करने के लिए निम्न उदाहरण प्रस्तुत करने का साहस करता हूँ –

1. लोकाशाह को अपनी भूल पर पश्चाताप और प्रायश्चित करना पड़ा और कई मनुष्यों को बिना गुरू के ही साधु का वेश पहनाकर साधु बना दिया। इसके पश्चात् श्री पार्श्वचन्द्रसुरि कृत गुर्जर भाषा के अनुवादित 32 सूत्र हाथ लगे, जिनका अध्ययन करने पर उनको वास्तविकता व सच्चाई का ज्ञान हुआ कि लोंकाशाह ने जिन क्रियाओं को निषेध किया, वह गलत थी। उसके बाद उनके अनुयायियों ने लोंकामत को त्यागकर शुद्ध जैन धर्म की ओर आये और मूर्तिपूजक बन गये। अंगपूजा, द्रव्यपूजा व भावपूजा करते हुए अपना कल्याण करने लगे। लोकाशाह के विद्वान यतियों ने मंदिरों की प्रतिष्ठा कराई, अनेक ग्रन्थ लिखे तथा जो टीका श्री पार्श्वचन्द्रसुरि ने की, वही मान्य रही अर्थात् मूर्तिपूजा का मतभेद मिट गया।

2. स्थानकवासी में भी चैत्य वंदन के नाम का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि **'चैत्य वंदन'** करना है। चैत्य शब्द का अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ मंदिर मूर्ति ही है।

3. मारवाड़ के गौरी ग्रन्थ में स्थानक वासी साधु हरकचन्दजी की मूर्ति स्थापित है जिसके दर्शन के लिए कई साधु–साध्वी आते हैं, वन्दन करते हैं, भाव पूजा करते हैं। सादड़ी में ताराचन्दजी म.सा. की पाषाण की मूर्ति है। अनेक स्थानों पर स्मारक बनाये गये एवं बनाये जा रहे हैं।

4. स्थानक वासी आरणियां म. इन्दरजी म. का समाधि मंदिर व चरण पादुका (पाषाण) की भरतपुर में स्थित है। मृत साधु–साध्वियों की समाधि स्थल व पादुका के दर्शन करते हैं, पुष्प माला, अगरबत्ती चढ़ाते है। यह क्या है।

5. स्थानक वासी तपस्वी साधु माणकचन्दजी के स्वर्गलोक गमनोपरांत अपने पूज्य पुरूष के मृत शरीर को रूपी द्रव्य से शृंगारित किया जैसे तीर्थंकर की मूर्ति को श्रंगारित करते हैं। क्या यह द्रव्य पूजा नहीं है?

6. श्रीचौथमलजी व आपके गुरू श्रीहीरालालजी महाराज, श्रीलालजी महाराज, श्रीशोभाचन्दजी, श्रीरतनचन्दजी महाराज के फोटो। फोटो क्यों?

7. रावलिया खुर्द (मेवाड़) में श्री रायचन्द जी महाराज सा. की समाधि बनी है वहाँ दशनार्थ आते हैं।

8. फोटो पूजा के इच्छुक काठियावाड़ी कच्छ का स्थानक वासी साधु समुदाय का फोटो– ये फोटो किसलिए?

9. मृत साधु के समक्ष बैठकर फोटो खिंचवाया क्यों? इसलिए अपने आपको पूजवाने के लिए फोटो खिंचवाया।

10. सिख सम्प्रदाय, आर्य समाज भी मूर्ति पूजा के विरोधी है, लेकिन मानते वे भी हैं। जैन व सिक्ख समाज के पूज्य पुरूषों की कई जगह समाधियाँ बनी हुई हैं, जहाँ हजारों लोग दर्शनार्थ आते हैं और द्रव्य पूजा करते हैं। इसी प्रकार आर्य समाज में, धार्मिक जुलूस में दयानन्द सरस्वती के फोटो को फूलों से सजाया जाता है और पालकी/सवारी में सजाकर घुमाते हैं।

11. पारसी लोग मूर्ति का नाम ही नहीं लेते लेकिन वे पक्के मूर्तिपूजक हैं। उनके इष्टदेव अग्नि हैं और अग्निदेव की पूजा करते हैं। उनके सामने बाजे बजाते हैं। पुष्प, धृत आदि चढाते है।

गुरूमूर्ति, पादुका, फोटो, समाधि स्थल पर जाकर दर्शन करते हैं और द्रव्य पूजा करते हैं। यह प्रक्रिया उनकी स्मृति में की जाती है। इन्होंने सम्पूर्ण हिन्दू समाज को नये सिरे से मूर्ति पूजा करने का विरोध किया। यह एक मूर्ति पूजा का ही आधार है।

यदि हम गुरूमूर्ति, पादुका, चित्र समाधि की पूजा करते हैं तो तीर्थंकर की मूर्ति की पूजा का विरोध कैसे कर सकते हैं। अब कुछ शिलालेखों की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं जिससे मूर्ति पूजा की प्राचीनता भी स्पष्ट होगी।

1. श्री कलिंगाधिपति महामेघ वाहन चक्रवर्ती महाराज खारवेल का शिलालेख जो 17 पक्तियों का है। उसमें पंक्ति नम्बर 12 का अवलोकन करें।

2. मथुरा की प्राचीन जैन मूर्ति के ऊपर का लेख संख्या 20 जो महावीर भगवान की प्रतिमा पर उत्कीर्ण है।

3. कनिष्क राज्य में संवत 90 का भगवान महावीर की प्रतिमा पर लेख।

प्राचीनकाल में राजा— महाराजाओं ने अपने चालू सिक्कों पर चैत्य चिन्ह अंकित करते थे। उत्तर भारत में खनन से इस प्रकार के कई सिक्के मिले। इतिहासकार डॉ. श्री त्रिभुवनदास लेहरचन्द ने अपनी पुस्तक 'भारत वर्ष का इतिहास' द्वितीय भाग में कई सिक्कों के चित्र दिये हैं। सिक्के पर जो दृश्य है, वे मौर्यकालीन हैं। अतः 2300 वर्ष प्राचीन है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पौराणिक काल में मंदिर व उसमें आराधना का प्रचलन था।

मनुष्य का अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना है, मोक्ष प्राप्ति के अलग–अलग आयामों में जिन मंदिर, जिन मूर्ति पूजन प्रथम सीढ़ी है। जैन शास्त्रों, आगमों का अध्ययन करें तो उससे स्पष्ट होगा कि 45 आगमों में से 32 आगमों में मूर्ति पूजा, वन्दन का वर्णन है जिसमे से कुछ उदाहरण निम्न हैं :–

1. श्रीभगवती सूत्र के बीसवें शतक के नवें दोहे में लब्धिधर चारण मुनियों द्वारा शाश्वत और अशास्वत जिन प्रतिमाओं की वंदना का उल्लेख किया गया है।
2. श्रीसूयगडागं सूत्र में चारणमुनि श्री नन्दीश्वर में चैत्यवन्दन के लिए जाते है।
3. श्रीरायपसेणी सूत्र में सूयाभदेव द्वारा पूजा का वर्णन है।
4. श्रीज्ञाता सूत्र में भवन पति निकाय के देवियों के जिन भक्ति की प्रशंसा की है।
5. श्रीभगवती सूत्र में प्रभु के सामने इन्द्रादि द्वारा किये गये नाटक का उल्लेख है तथा इसी सूत्र के दशवें शतक के छठे श्लोक में इन्द्र की सुधर्म सभा में वीतराग की आशातना का वर्णन है।
6. श्रीजीवाभिगम सूत्र में विजयदेव द्वारा किये गये नाटक की प्रशंसा का उल्लेख है।
7. श्रीठाणांग सूत्र में श्री नंदीश्वर द्वीप पर कई देवी–देवताओं द्वारा की गई पूजा का वर्णन है।
8. श्री दशवैकालिक सूत्र में देवताओं को मनुष्य की अपेक्षा अधिक समृद्ध बताया है। फिर भी महत्व मनुष्य भव का ही है, क्योंकि मनुष्य भव से ही मोक्ष प्राप्त होता है।
9. श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे जिनेश्वर देव की अस्थियाँ आदि अवयवों को देवताओं द्वारा अपने स्थान पर ले जाकर भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं।

इस प्रकार इन्हीं आगमों में श्रावकों द्वारा प्रतिमा की पूजा का उल्लेख है, जैसे –

1. श्रीउववाई सूत्र में अंबड परिवाजक व उनके 700 शिष्यों ने वीतराग को नमन किया व उनकी प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य किसी की भी पूजा न करने की प्रतिज्ञा की।
2. श्री उपासक दशांग सूत्र में आनन्द श्रावक ने अन्य तीर्थों व अन्य देवी–देवताओं को नमन नहीं करने की प्रतिज्ञा की।
3. श्रीसमयायांग सूत्र में आनन्द व अन्य श्रावकों ने जिन मंदिरों का वर्णन किया है।
4. श्रीकल्पसूत्र में सिद्धार्थ राजा द्वारा जिन प्रतिमा की पूजा का उल्लेख है।
5. इसी प्रकार श्रीभगवती सूत्र में, ज्ञाता सूत्र में, उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में प्रतिमा–पूजा का उल्लेख है।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि जिन प्रतिमा की पूजा से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुंच

सकता है क्योंकि मंदिर व मूर्ति हमारी संस्कृति के व ऊर्जा के प्रमुख स्त्रोत हैं ।

इसके अतिरिक्त भी भारत में ही नहीं वरन् दुनियाँ के अन्य देशों में भी मूर्तिपूजा का प्रचलन काफी प्राचीन है जिसके उदाहरण निम्न हैं :–

1 आष्ट्रिया प्रदेश के हंगरी प्रान्त के बुढ़ापेस्ट नगर के एक भूभाग को खोदते हुए महावीर भगवान की मूर्ति मिली है जो सम्प्रति कालीन है। इसका अभिप्राय यह है कि महाराजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार ने अनार्य देश के आर्द्रकपुर नगर के राजकुमार, आर्द्रकुमार के लिए भगवान ऋषभदेव की मूर्ति भेजी थी।

2 अमेरिका में भी खनन कार्य से प्राप्त ताम्रमय सिद्धचक्र यंत्र मिला वह सम्प्रतिकालीन था।

3 अमेरिका व मंगोलिया के भूगर्भ में जैन मंदिर, प्रतिमाऐं विद्यमान है। यूरोपीय यात्री द्वारा दिये गये विचार (दैनिक अखबार 'बम्बई समाचार' 4 अगस्त का अंक सन् 1936)

4 उत्तरी अफ्रीका में प्राचीन मिश्र में **असिरिश** और **आइरिस** नामक लिंग अब भी पूजे जाते हैं शिव के समान ही मस्तक पर सर्प और हाथ में त्रिशुल है और ऋषभ पर सवार है।

5 उत्तरी अफ्रीका में जितनी अरब जातियाँ हैं, वे **शिवलिंग** और **शक्ति** की पूजा करते हैं।

6 ग्रीस में लिंग पूजा का प्रचलन अभी तक चल रहा है।

7 रोम और फ्लोरन्य नगर में बोक्त नामक देव की पूजा होती है।

8 ग्रीस में पान, ग्रीवायस, मीनर्वा, पीगेश नामक मूर्तियों की पूजा होती है।

9 रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के लोग इटली में लिंग व अन्य मूर्तियॉ पूजते हैं।

10 आर्यलेण्ड के नथटन–स्टीग, राउण्डजीरा और इजीक्मीऊरा में देवी की मूर्ति दरवाजे के ऊपर होती है व पूजा होती है।

11 स्कॉटलेण्ड के ग्लासगो नगर में सुवर्ण पत्र जड़ित सूर्य की मूर्ति की पूजा करते हैं।

12 तुर्की के ओसीर्या नामक मुल्क के **बाबिलिन** शहर में 100 घनफीट का शिवलिंग हैं और तापण्डा, पोलिस व अन्य नगर में 300 घनफुट की शिवमूर्ति है।

13 इंग्लेण्ड में यार्क प्रान्त में स्टोनहेज नामक मूर्ति की पूजा होती है।

14 अरबस्तान में मुहम्मद के जन्म के पहले से ही लात, मनात, अल्लात, अल्लाउजन नामक मूर्तियों की पूजा की जाती है।

15 मक्का में संग, अस्वह और मक्केश्वर महादेव की मूर्ति का चुम्बन होता है। नजरा में खजूर की पत्तियों की पूजा की जाती है।

16 जावा, सुमात्रा में लिंग की पूजा होती है।

17 फिनिशिया देश में बालसूर्या देवी की पूजा होती है। बलबलक में सूर्य मंदिर है।

18 श्याम देश में ऐकोनिस और पष्टर गैटिस नामक मूर्ति की पूजा होती है।

19 फिजिशियन देश में ऐटिस नामक लिंग मूर्ति की, निनिका नगर में एशिरा नामक मूर्ति की पूजा होती है।